Multidisciplinary International Magazine
(Peer-Reviewed)
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankriti.com
Volume 6, Issue 69-70, Jan-Feb 2021

JANKRITI जनकृति

बहु-विषयक अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
(विशेषज्ञ समीक्षित)
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankriti.com
वर्ष 6, अंक 69-70, जनवरी-फरवरी 2021

बंसी कौल : विविधता और अन्विति का अनोखा रंग-संसार

डॉ. प्रोमिला

असिस्टेंट प्रोफेसर,

हिन्दी विभाग, अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, हैदराबाद

संदर्भ

बंसी कौल की लगभग चार दशक लंबी रंगयात्रा में एक विविधता बनी रहती है। सत्य है कि विविधता का होना अपने आप में उत्कृष्ट होने का मानक नहीं हो सकता पर यदि विविधता रंगकर्मी के निरंतर विकास और अपने आपको, अपने रंगलोक को लगातार सार्थक रूप से पुनः परिभाषित करते चलने से आती है तो यह प्रस्तुतियों को संपन्नता देती है। बंसी कौल ने स्वयं को दोहराया नहीं, प्रत्येक प्रस्तुति में लोक के किसी रूप को रेखांकित करते हुए बहुत कुछ नया अन्वेषित किया है।

बीज शब्द: *रंगमंच, बंसी कौल, यात्रा, रंग सर्जक*

आमुख

समकालीन हिंदी रंगमंच को समृद्ध करने वाले अहिंदी भाषी नाट्य निर्देशकों में पद्मश्री सम्मानित बंसी कौल ऐसे समन्वेषक यात्री हैं, जिन्होंने कई आवर्तनों, अवस्थाओं से गुजरते हुए अनेक अनदेखे, अनजाने मार्ग खोजे हैं। संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने रीति या शैली के लिए एक अन्य पारिभाषिक शब्द मार्ग का प्रयोग किया था। मार्ग यानी जिसे अपने लिए खोजा और पाया जाता है। प्रत्येक सर्जक अपना मार्ग तलाशता है और यह तलाश भी एक अंतहीन यात्रा का पर्याय बुनती है। एक दूसरे से संयुक्त अगणित पथों पर ले जाती है। दण्डी ने 'अस्त्यनेको गिरां मार्गः सूक्ष्मभेदः परस्परम्' (काव्यादर्श, १॥७०) कहकर वाणी के अनेक मार्ग और उनके एक-दूसरे से सूक्ष्म रूप से अलग-अलग होने की बात कही थी। असल में मार्ग या शैलियों की अनंतता की बात में उन्होंने उनमें सूक्ष्म भेद के साथ पारस्परिकता को भी स्वीकारा था। प्रत्येक कलाकार वाणी के असंख्य मार्गों पर चलता है और इस विधि-मार्ग के मध्य की आवाजाही में वह अपना एक सामंजस्य संसार निर्मित कर लेता है। इस तरह रंगसर्जक की विविध प्रस्तुतियों में ही नहीं, किसी एक प्रस्तुति में भी अगणित मार्गों पर यात्रा करने की विविधता के साथ निर्देशक की प्रातिस्विकता बनी रहती है। एक निर्देशक में वाणी के अनंत पथ खुलते हैं। बंसी कौल भी अपनी नाट्य प्रस्तुतियों में वाणी के अनेकानेक मार्गों से गुजरे हैं। उन्होंने भारतीयता की विविधता, समग्रता और लोक कलाओं के साथ उसके अंतर्गुफन को रेखांकित किया है, सांस्कृतिक विवेक को सहेजा है पर उनके समस्त रंगकर्म की सार्थकता का निकष सदैव सामाजिक प्रतिबद्धता और व्यक्ति पक्षधरता ही बनी है।

बंसी कौल की रंगदृष्टि में जीवन का प्रवाह जो जितना ही गहरा है, उतना ही तीव्र, आवर्तों, विवर्तों, भंवरों और लहरों से संकुल भी, पिरोया हुआ आया है। उनके रंगचिंतन के बनने में श्रीनगर की झेलम पर बने फतेहकदल नामक तीसरा पुल, नदी में लगाई बचपन की डुबकियां, मोहल्ले की टेढ़ी-मेढ़ी गलियों की दौड़-धूप, जम्मू में रोजी-रोटी कमाने के लिए (उनके द्वारा) की गई चित्रकारी, बनाए गए साइनबोर्ड, ट्रकों के पीछे लिखी गई शायरी-नबंर प्लेटों की गहरी नींव पड़ी है। पिता पढ़े-लिखे थे किंतु उनकी आंखों की रोशनी चली गयी थी। परिवार अभावों में जी रहा था। घर में गरीबी पसरी थी पर जब भी बंसी कौल ने अपने अतीत को याद किया है तो पाया कि उसने उनको तोड़ा नहीं बल्कि वह रचनात्मक बन गया है। उन्होंने उसे अपने काम में देखने की कोशिश की है। अतीत ने उन्हें सनकी नहीं बनाया वरन अधिक सुंदर अनुभव करवाया है। बंसी कौल ने माना कि जो लोग दर्द से नहीं गुजरते, वे अभागे हैं। क्योंकि उन्हें जो अनुभव मिला है उसके लिए उन्हें कीमत नहीं देनी पड़ी है। उस अनुभव ने बंसी कौल को समृद्ध किया है।

1973 में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से मंचशिल्प में स्नातक के पश्चात बंसी कौल ने वहीं रिपर्टरी कंपनी के साथ एक निदेशक के रूप में अपनी जीवनयात्रा प्रारंभ की और 1984 में भोपाल जाकर 'रंगविदुषक' नामक थिएटर ग्रुप स्थापित किया, जिसने अन्य तत्वों के साथ-साथ 'थिएटर ऑफ लाफ्टर' को भी अपने मंचन में एक निर्णायक बिंदु माना। वे कहते हैं, 'शुरू से ही घुमक्कड़ी रहा हूं। यायावरी जीवन में जो देखा सुना व समझा, वे ही मेरे रंगकर्म में स्वत: आते चले गए...राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के प्रशिक्षण ने मुझे उतना प्रभावित नहीं किया जितना घुमक्कड़ी जीवन ने मुझे आकर्षित किया। मैंने आसपास जो देखा, मेरे रंगमंच में वह ज्यादा काम आया।'1 और आज इसी अभिप्राय में उनकी 100 से अधिक नाट्य प्रस्तुतियां कार्यकारण-संबंधों की रूढ़ अवधारणाओं को तोड़कर रंगजगत में भिन्न प्रकार के कार्यकारणभाव के साथ दर्ज हैं। विडंबनाएं, विसंगतियां, विरोध और व्यत्यय, सब यहां हैं पर अभिनव रूपों में। बंसी कौल में लोक और क्षेत्रीय संस्कृति के प्राथमिक तत्वों की प्रेरणा, अनोखी अंतर्दृष्टि तथा मौलिक सामुदायिक चिंताओं का बोध प्रधान है। उन्होंने एक प्रश्न करते हुए स्पष्ट लिखा है कि 'क्या हम सभी उस जीवन को जीते हैं जो लोक रूपों में झलकता है? हम नहीं जीते। तो हम क्या करते हैं? हम प्रभावित होते हैं, हम विचार आत्मसात करते हैं और अंततः अपने स्वयं के थिएटर की खोज करते हैं, हमारे अपने जीवन का एक उत्पाद। आधुनिक थिएटर में नई सामग्री का उपयोग किया जा रहा है। संचार के लिए पारंपरिक और लोक रूप हमें नए मुहावरे बनाने हेतु प्रेरित और समर्थित कर रहे हैं। हम इन रूपों का उपयोग उनकी शुद्धता को साबित करने के लिए नहीं कर रहे क्योंकि पवित्रता का प्रश्न, यहाँ भी, बहस का विषय है। लोक रूप अपनी विषयसामग्री से मोहित हो जाते हैं। तो यहां 'विषयसामग्री' से हमारा सही में क्या तात्पर्य है। क्या हमारा तात्पर्य राजनीतिक नारों, राजनीतिक उपदेश या सामाजिक व्यवस्था के सरलीकरण से है? लोक रूपों की सामग्री चाहे पवित्र हो या धर्मनिरपेक्ष, समुदाय का साझा मिथक है, न कि व्यक्तियों का अनुभव। तो

अब, जब हम शहरों के थिएटर में नई सामग्री पेश कर रहे हैं, हमें यह पता लगाना होगा कि क्या ये (मिथक) सामूहिक शहरी चेतना का हिस्सा हैं। समकालीन रंगमंच में मिथक का पुनरुत्पादन आवश्यक है क्योंकि यह एक सामूहिक चेतना प्रदान करता है।'2

बंसी कौल चले आ रहे नाट्य-सूत्रों और सिद्धांतों की लीक पर चलकर उन्हीं का पिष्ट-पेषण नहीं करते बल्कि यह मानते हुए कि 'अकूत भंडार हमारी रंग परंपरा में और हमारे चारों ओर बिखरा हुआ है। जरूरत उससे अपने विपन्न रंगमंच को संपन्न बनाने की है।'3 वे भारत के परंपरागत अखाड़ों, मजमेंबाजों, नटों, भांड़ों, कंजरो के शारीरिक करतबों, उनकी भाषाओं से आधुनिक भारतीय रंगमंच और अभिनेताओं के शारीरिक प्रशिक्षण के लिए उपयोगी तत्व तलाशने हेतु लंबा शोध करते हैं। जो कुछ सार्थक लगता है उसे अपना लेते हैं और निरर्थक को हवा में उड़ा देते हैं। रंगमंच-स्थापन की समकालीन अवधारणाएं, नयी अर्थवत्ताएं, नये मुहावरे और नयी प्रदर्शन शैली गढ़ते हैं। रंगमंच को केवल शब्द तक सीमित न रखकर उसे शरीर, मुद्रा, देह-भाषा, संगीत आदि की बहुभाषाओं के समिश्रण में देखते हैं। यहां तक कि हंसी को भी एक सशक्त टूल स्वीकारते हैं। उनके लिए हंसी ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है। हंसना फूहड़पन नहीं, एक तरह का विचार, बौद्धिक प्रक्रिया, एक प्रकार की संवेदनशीलता है। यह अपने आप में एक सोच है। हंसना मुखर विरोध है और विदूषक केवल मसखरा नहीं होता। वह केवल हास्यास्पद मुद्राएं नहीं अपनाता वरन वह दर्शक और मंच दोनों का प्रतिनिधित्व करते हुए पुल का काम करता है। दशर्क की ओर से रंगमंच तथा रंगमंच की ओर से दर्शक के आलोचक की भूमिका निभाता है। पूरे रंग-पटल पर अपनी सेक्यूलर उपस्थिति दर्ज करता है।

बंसी कौल की लगभग चार दशक लंबी रंगयात्रा में एक विविधता बनी रहती है। सत्य है कि विविधता का होना अपने आप में उत्कृष्ट होने का मानक नहीं हो सकता पर यदि विविधता रंगकर्मी के निरंतर विकास और अपने आपको, अपने रंगलोक को लगातार सार्थक रूप से पुनः परिभाषित करते चलने से आती है तो यह प्रस्तुतियों को संपन्नता देती है। बंसी कौल ने स्वयं को दोहराया नहीं, प्रत्येक प्रस्तुति में लोक के किसी रूप को रेखांकित करते हुए बहुत कुछ नया अन्वेषित किया है। और यह अन्वेषित दाय अपने समयबोध को, वर्तमान कालिकता को अलग-अलग प्रस्तुतियों में अलग-अलग ढंग से मुखरित करता आया है। जैसे, जब एक ओर स्त्री-पुरुष संबंधों की नवीन पड़ताल के तहत 'संघर्ष ही तो सगुन है', सूत्र को केंद्रित कर 'नाटक तोता मैना' को 'सगुन पंछी' नाम से लक्ष्मीनारायण लाल ने दोबारा रचा तो एक अनुभवी निर्देशक की भांति बंसी कौल ने 1976 में इसके प्रस्तुतीकरण में निसंकोच सब पात्रों के लिए मुखौटों का प्रयोग किया। इसकी मंचन-प्रक्रिया पर लिखा कि 'सगुन पंछी को पढ़कर मुझे जितना महत्वपूर्ण इसका कथ्य लगा उतना ही आकर्षक मुझे इसका फॉर्म लगा।... फॉर्म मेरे लिए एक चुनौती थी। खासकर उसे प्रदर्शन के धरातल पर सजीव प्रस्तुत करना। मैं जन्म से कश्मीरी, नाट्य शिक्षा संस्कार से दिल्ली के नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा का- और अपनी रंग प्रकृति में 'सगुन पंछी' शुद्ध

अवध का- ठेठ पूरब के लोक रंगमंच के तत्वों को अपने में समाहित किए हुए।... मैंने उसका गायन शुरू किया। ज्यों-ज्यों उसका संगीत फैला, त्यों-त्यों उसका फार्म मेरे सामने सजीव होने लगा। तब एक महत्वपूर्ण बात मेरे हाथ लगी। लाल ने सगुन पंछी के रूप में कोई पारंपरिक ज्यों का त्यों लोक नाटक नहीं लिखा, वरन उन्होंने अपने लोक नाटक, लोक रंगमंच के किन्ही जीवंत नाट्य व्यवहारों, तत्वों, परंपराओं और रूढ़ियों का इस्तेमाल कर एक नया नाटक निर्मित किया है। एक रचना की है अपनी लोक परंपराओं के तत्वों के कलात्मक योग से।... मैंने यहां तक अनुभव किया कि यह रचना तब हुई है जब इसके रचनाकार ने अपने लोक-तत्व को अपने समय, काल और संदर्भ में देखा है- और देख कर पाया है, 'सगुन पंछी'।'4 वहीं दूसरी ओर, बंसी कौल ने 1980 में रामेश्वर प्रेम से कहकर बेन जॉन्सन के बहुचर्चित नाटक 'वालपोनि ऑर दि फाक्स' को 'लोमड़ खान का वेश' नाम से गुजरात की भवाई लोकनाट्य शैली में तैयार करवाया और वालपोनि, मस्का, कौवा खां आदि पात्रों को उनके चारित्रिक गुणोनुसार विशेष पक्षी की वेशभूषा में मंचित किया। इससे रंगप्रस्तुति चरित्रों की सोच से अलग-थलग ना होकर, अपने प्रदर्शन मूल्यों में एक उल्लेखनीय अनुभव रचती दर्शक के सामने आयी। निसंदेह निर्देशक बंसी की उपर्युक्त टिप्पणी और 'लोमड खान' की रंगयोजना हिंदी रंग-सृष्टि के प्रति उनकी गहन निष्ठा, सूझबूझ, परंपरा बोध के परिचायक और प्रस्तुतीकरण में महत्वपूर्ण प्रदर्शन मूल्यों के प्रति सजगता की दर्पण बनी।

कहा गया है कि रंगमंच की सत्ता मनुष्य जीवन के साथ होती है और लोक-परंपराओं की समझ रंगकर्मी के अनुभव को, उसके ज्ञान को एक नये विधान से जोड़ देती है। बंसी कौल ने रंगमंच की एकरेखीयता से इंकार करते हुए उसे अपने सभी रूपों में सामूहिकता की भावना को बढ़ावा देने, जिस स्थान में प्रदर्शन किया जाता है उसके साथ संबंध विकसित करने के लिए व्यक्ति को साथ लाने, अपने सच्चे अर्थों में सामाजिक परिवर्तन का एक साधन, युवाओं को सकारात्मक दिशा में आकर्षित करने वाला प्रयास करार दिया है। लोक रूपों को केवल सस्ते मनोरंजन मात्र नहीं ठहराया उन्हें हमें सामाजिक ज्ञान प्रदान करने वाला बताया है। किंतु यह ज्ञान उथले रूप में नहीं मिलता, हमें इसे निरंतर एकाग्रता के साथ खोजना होता है और अंततः अपनी स्वयं की अभिव्यक्ति ढूंढनी पड़ती है। स्वतःस्फूर्त कार्यशैली तथा भावबोध के कारण ही बंसी कौल का नाट्य-मंचन अपने आप में बड़ी मार्मिक व्यंजनाओं के साथ संप्रेषित हुआ है। वैसे भी सशक्त नाटक के प्रस्तुतीकरण में आधुनिक- प्राचीन, शास्त्रीय और लोक का भेद सहज ही मिट जाता है। कबीर के दर्शन, उनके समय के सामाजिक संघर्ष, शासक वर्ग की क्रूरता और धार्मिक कट्टरता पर लिखे गए राजेश जोशी के नाटक 'कहन कबीर' का जब बंसी कौल ने मंचन किया तो कबीर संत नहीं बल्कि अपने आप में सोशल मूवमेंट, सेक्यूलर मूवमेंट, स्पिरिचुअल मूवमेंट बन गए। उनके माध्यम से समाज के तनाव पर चर्चा उभरी। कबीर के समय का यथार्थ बंसी कौल के समय से संयोजित हो गया और प्रदर्शन में नाटक असंगठित क्षेत्र के-आज के बुनकर के मुद्दों से जुड़ गया। इसी प्रकार जिस 'उरुभंगम्' (भास) के अंतिम दृश्य को कावालम नारायण पणिक्कर ने केरल के

पारंपरिक लोकनाट्य थयम्म् रूप में प्रस्तुति दी थी, बंसी कौल ने उसे चलते-फिरते कोरस में बदलते हुए नयी परिपाटी, नयी अभिव्यंजना में रचा। दुर्योधन की मृत्यु के समय कोरस ने रुदन किया। दुर्योधन कोरस के पीछे से कुछ बोलता हुआ, सरका और कोरस ने उसे ढक लिया। बंसी कौल ने इसे कश्मीर में बिताए अपने बचपन की स्मृति से जोड़ा। कश्मीर के पहाड़ों में रोने की आवाज एक लहराता-सा रूप ले लेती है। रोते हुए कोरस को बंसी कौल ने मानवीय शरीरों की बनी हुई यवनिका की तरह परिकल्पित किया, जिसमें मरता हुआ दुर्योधन दर्शकों की आंखों से ओझल हो गया। 5

बंसी कौल के आग्रह पर नाटककार मुद्राराक्षस ने रूसी लेखक गोगोल के चर्चित नाटक द गवर्नमेंट इंस्पेक्टर को नौटंकी शैली में प्रस्तुत करने के लिए 'आला अफसर' नाम से रचा। नाटक में मुद्राराक्षस ने बंसी कौल की रंग विशिष्टता को रेखांकित करने के क्रम में लिखा कि 'बंसी की प्रस्तुति और व्यवसायिक रंगमंडलियों की प्रस्तुति में बहुत बड़ा अंतर है। जहां व्यवसायिक मंडलियां सबसे कम व्यवसायिक नाटक कौशल का इस्तेमाल करती हैं, वही बंसी ने इसमें आधुनिक नाटक की पेशेवर तकनीक का इस्तेमाल सावधानी और लगन से किया। मेकअप, रंगदीपन, दृश्यबंध और परिधान के मामले में व्यवसायिय मंडलियां बेहद कमजोर होती हैं जबकि बंसी ने इन्हें पूरे कौशल से प्रयुक्त किया।' (आला अफसर, पृ.11-12) नाटक में डोपचिन और वोपचिन चरित्र भांड परंपरा अनुसार आए। लोक यानी आम जन के जीवन में व्यापत नाट्य-भाव लक्षित कार्य, व्यवहार एवं विधान का प्रस्तुतीकरण हुआ। इसी प्रकार धर्मवीर भारती के अंधा युग में भी युद्ध और विध्वंस के विराट दिन को देखने की बजाए बंसी कौल ने 1983 की अपनी प्रस्तुति में युद्ध के कारण विक्षुब्ध, भयाक्रांत, आस्थाहीन, विवेकशून्य और कुंठित हुए चरित्रों के अध्ययन, विश्लेषण को देखा। छाउ नृत्य गतियों के प्रयोग तथा वेशभूषा, रूप विन्यास और मुखौटों के चरित्रों को आदिम कबीलाई रंगत प्रदान की, जिससे पूरा नाटक कुछ-कुछ प्रागैतिहासिक काल का सा रूप लेकर निरर्थक ध्वनियों के सार्थक विनियोग का उपक्रम लक्षित हुआ। (जयदेव तनेजा, अंधा युग पाठ और प्रदर्शन,पृ.154-155) हांलाकि इससे पहले बंसी कौल 1979 मे इसकी एक सीधी-सादी स्कूली-प्रस्तुति कर चुके थे, जिसमें किले के दृश्य-बंध का प्रयोग किया गया था।

कुल मिलाकर बंसी कौल की तकनीक रंगशिल्प में भराव लाती है। उनके निर्देशक, अभिकल्पक और दृश्यकल्पक व्यक्तित्व की अन्विति बनती है। कौल का रंग-मुहावरा देखने-सुनने में जितना सीधा-सरल लगता है, उतना ही दुरूह है। उसकी जड़ों के लिए उस जमीन की समझ आवश्यक ठहरती है, जिसमें वह गढ़ा गया है।

संदर्भ-

1. शकील खान, 'विश्व नागरिक' रंग निदेशक बंसी कौल अस्वस्थ हैं, हिन्दी न्यूज डाट काम, नवंबर 25, 2020

2. बंसी कौल, ट्रेडीशन ऑल राउंड अस, संगीत नाटक, त्रैमासिक जर्नल, जुलाई-दिसंबर, 1985, पृ. 22-23
3. उदय प्रकाश, ईश्वर की आंख, पृ.196
4. लक्ष्मीनारायण लाल, निर्देशक की ओर से, सगुन पंछी, पृ.17-18
5. संगीता गुन्देचा, कावालम नारायण पणिक्कर : परंपरा और समकालीनता, प.105

संपर्क सूत्र-असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, हैदराबाद-500007, मो.-8977961191